78

''समय आ गया है''

यूहन्ना 12:20-36, 46-48, एक निकट दृष्टि

कई मौकों पर, मुझ से ''यदि मुझे एक और प्रवचन देना हो'' विषय पर प्रचार करने के लिए कहा जाता है।[1] एक से अधिक बार मैंने अपने आप से पूछा है, ''यदि मुझे सचमुच पता हो कि यह मेरा अन्तिम प्रवचन होगा तो मैं क्या प्रचार *करूंगा* ?'' जितनी बार मैं यह प्रश्न पूछता हूं, हर बार एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचता हूं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि मेरा चयन सुनने वालों की आवश्यकता और उस समय मेरी मनोस्थिति पर निर्भर करता है।

यूहन्ना 12 में, हमें जो उपदेश मिलता है, उसे यीशु का अन्तिम सार्वजनिक उपदेश कहा जा सकता है,[2] जो क्रूस पर सात वचन सुनने से पहले अन्तिम बार लोगों द्वारा सुना गया था। यदि ''यदि मुझे एक और प्रवचन देना हो'' विषय पर प्रचार करने के लिए यीशु को कहा गया होता, तो वह क्या कहता? शायद यूहन्ना 12:20-36 इसका उत्तर देता है।

मसीह की सेवकाई के अन्तिम सप्ताह का मंगलवार था। यीशु मन्दिर में सिखा रहा था,[3] कि कुछ अन्यजाति लोगों ने उससे भेंट करनी चाही। कहानी आरम्भ होती है, ''जो लोग उस पर्व में आराधना करने आए थे, उन में से कई यूनानी थे'' (यूहन्ना 12:20)। हो सकता है कि ये लोग यहूदी धर्मांतरित हों, पर कुरनिलियुस की तरह वे भी ''परमेश्वर का भय मानने वाले'' होंगे[4] (प्रेरितों 10:1, 2): सच्चे परमेश्वर में विश्वास करने वाले अन्यजाति, परन्तु जिन्होंने यहूदी बनने की धर्मांतरित होने की प्रक्रिया पूरी नहीं की थी।[5]

''उन्होंने गलील के बैतसैदा के रहने वाले फिलिप्पुस के पास आकर ...'' (यूहन्ना 12:21क)। हम पक्का नहीं जानते कि ये यूनानी फिलिप्पुस के पास क्यों आए। शायद इसलिए कि फिलिप्पुस का नाम यूनानी था।[6] शायद वे भी बैतसैदा के रहने वाले थे।[7] शायद यीशु के चेलों में फिलिप्पुस ही सबसे पहले उनसे मिला था।

उन्होंने ''उससे विनती की, कि श्रीमान हम यीशु से भेंट करना चाहते हैं'' (यूहन्ना 12:21ख)। उन्हें यीशु के बारे में कैसे पता चला? हो सकता है कि कुछ दिन पूर्व उसके द्वारा मन्दिर को शुद्ध करने से पहले वे वहीं हों। हो सकता है कि उन्होंने उसे अन्यजातियों के आंगन में वचन सुनाते हुए देखा हो। परन्तु उन्होंने उसके बारे में सुना था, वे उसे और अच्छी तरह जानना चाहते थे।[8] बाइबल कहती है कि उन्होंने ''विनती की कि ...।'' मूल यूनानी संरचना में संकेत मिलता है कि उन्होंने ज़िद की।

फिलिप्पुस को पक्का पता नहीं था कि उसे क्या करना चाहिए। मसीह ने बारह चेलों

को अन्यजातियों के पास नहीं, बल्कि केवल ''इस्राएल के घराने ही की खोई भेड़ों के पास'' जाने के लिए कहा था (मत्ती 10:5, 6)। फिलिप्पुस ने एक मित्र की सहायता मांगी:[9] ''फिलिप्पुस ने आकर अन्द्रियास से कहा'' (यूहन्ना 12:22क)। फिर अन्द्रियास और फिलिप्पुस दोनों ने आकर ''यीशु से कहा'' (आयत 22ख)।

हमें यह कहीं नहीं बताया गया कि यीशु ने यूनानियों की विनती स्वीकार की या नहीं। यूहन्ना ने यूहन्ना 12 के अन्तिम भाग में यीशु के शब्दों की पृष्ठभूमि देने के लिए कहानी जोड़ी है, न कि हमें पूरा विवरण बताने के लिए। जो भी हो यह उत्तर देने के समय प्रभु के मन में वे यूनानी और दूसरे सब अन्यजाति, जिनमें हम भी हैं (देखें आयत 32) थे।

फिलिप्पुस और अन्द्रियास द्वारा यीशु को यह बताने पर कि यूनानियों की क्या इच्छा है, उसने उत्तर दिया था, ''वह समय आ गया है'' (आयत 23)। इस वाक्यांश से प्रभु ने उस विषय का परिचय दिया, जिसे उसकी अन्तिम सार्वजनिक प्रस्तुति कहा जा सकता है। अभी तक, वह कहता था कि ''उसका समय अब तक *न* आया था'' (यूहन्ना 7:30; देखें यूहन्ना 2:4; 7:6; 8:20) पर अब आ गया *था* (देखें यूहन्ना 13:1)।

यह कहते हुए कि ''समय आ गया है,'' यीशु के मन में मुख्य रूप में अपनी मृत्यु थी (यूहन्ना 12:24); परन्तु बाइबल इससे जुड़े कई विषयों को स्पर्श करती है। इसी कारण, ''समय आ गया है'' पर हमारे अध्ययन में कई विषय शामिल होंगे। परन्तु मुख्य विषय क्रूस ही रहेगा।

क्रूस तथा समर्पण का समय (आयतें 23-26)

क्रूस (आयतें 23, 24)

मसीह ने अपना प्रवचन यह कहते हुए आरम्भ किया, ''वह समय आ गया है, कि मनुष्य के पुत्र की महिमा हो''[10] (आयत 23)। ''मनुष्य का पुत्र'' मसीहा को ही कहा गया है (दानिय्येल 7:13)। यीशु कह रहा था कि ''समय आ गया है, कि मसीह की महिमा हो।'' वह अपनी मृत्यु के बारे में विचार कर रहा था (यूहन्ना 12:24), परन्तु वह कब्र के आगे पुनरुत्थान तथा स्वर्ग पर उठाए जाने को भी देख सकता था।

यीशु की बातों से भीड़ उत्तेजित हो गई होगी। उनके दिमाग में, ''महिमा हो'' शब्द का अर्थ मसीहा के राजनैतिक राज्य की स्थापना था। उन्हें कुछ दिन पहले नगर में विजयी प्रवेश के समय मसीह की महिमा की उम्मीद थी; परन्तु किसी कारण उनकी उम्मीदें पूरी नहीं हुई थीं। अब अन्ततः वह महिमा की ही बात कर रहा था। वे यीशु द्वारा रोमियों के विरुद्ध अभियान आरम्भ करने और अपना सिंहासन स्थापित करने की घोषणा करने की प्रतीक्षा बड़ी बेसबरी से करते होंगे। उनकी अवधारणा यह थी कि अन्त में अनन्तकाल की तुरही बज चुकी थी, स्वर्ग की सेनाएं तैयार थीं और विजय सामने थी! कितना निराशाजनक रहा होगा कि मसीहा सैनिक युद्ध नीति पर चर्चा करने के बजाय, मरने की बातें करने लगा!

प्रभु ने एक साधारण परन्तु शानदार उदाहरण दिया: ''मैं तुम से सच-सच कहता हूं,

कि जब तक गेहूं का दाना भूमि में पड़कर मर नहीं जाता, वह अकेला रहता है, परन्तु जब मर जाता है, तो बहुत फल लाता है'' (आयत 24)। दाने को आप अलमारी में रख दें, वहां यह बिल्कुल नहीं बढ़ेगा अर्थात यह ''अकेला'' रहेगा। दाने को भूमि में गाड़ दें और इसे पानी दें, और यह ''मर'' जाएगा (अर्थात यह खत्म होकर अपनी पहचान खो देगा)-परन्तु यह ''मृत्यु'' इसे ''बहुत फल लाने'' के योग्य बनाएगी। यह सौ गुणा या साठ गुणा या तीस गुणा बढ़ जाएगा (मत्ती 13:8), इस उदाहरण में बीज स्वयं यीशु है। यदि वह न मरता, तो उसमें अपना जीवन तो होता परन्तु दूसरों को आशीष नहीं दे सकता था। नया जीवन अस्तित्व में लाने के लिए उसका मरना आवश्यक था।

समर्पण (आयतें 25, 26)

मसीह ने आगे कहा, ''जो अपने प्राण को प्रिय जानता है, वह उसे खो देता है; और जो इस जगत में अपने प्राण को अप्रिय जानता है; वह अनन्त जीवन के लिए उसकी रक्षा करेगा'' (आयत 25)। ''अप्रिय'' का अर्थ यहां ''कम प्रिय'' जानना है। हमें प्रभु की इच्छा से प्रेम करने की तुलना में अपने आप से कम प्रेम करना है। यह प्रवचन विरोधाभासों से भरा है: ''यदि तुम अपने जीवन से प्रेम रखो, तो तुम इसे खो दोगे''; ''यदि तुम अपने जीवन को अप्रिय जानते हो, तो इसे पाओगे''; ''जीने का एकमात्र ढंग मरना है।''

यीशु ने ये शब्द पहले अपने ऊपर लागू किए: यदि वह अपने उद्देश्य को पूरा करना चाहता था, या यदि उसे परमेश्वर की योजनाओं में अपना महत्व बनाना था, तो उसके लिए मरना आवश्यक था। यदि हम परमेश्वर के लिए महत्वपूर्ण होना चाहते हैं तो हमारे लिए, भी ''मरना'' आवश्यक है। बहुत से आरम्भिक मसीही लोगों को परमेश्वर के वफ़ादार बने रहने के लिए शारीरिक मृत्यु सहनी पड़ी थी (प्रकाशितवाक्य 2:10)। हमें ऐसा बलिदान करने के लिए तो नहीं कहा गया, पर फिर भी ''अपने आप के लिए मरना'' आवश्यक है। पौलुस ने लिखा है, ''मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया हूं, और अब मैं जीवित न रहा, पर मसीह मुझ में जीवित है'' (गलातियों 2:20क)।

अपनी बात को जारी रखते हुए, यीशु ने अपने विचार का अर्थ समझाया और ''मरने'' के लिए तैयार होने अर्थात उसकी सेवा करने के लिए तैयार होने की ज़बर्दस्त प्रेरणा दी। उसने ''यदि कोई मेरी सेवा करे, ...'' (यूहन्ना 12:26क) कहते हुए आरम्भ किया। हम दिखाते हैं कि प्रभु के लिए नि:स्वार्थ सेवा के लिए अपने जीवन देकर हम अपने आप को ''अप्रिय'' जानते हैं। यीशु ने ऐसा समर्पण करने वाले के लिए कहा कि वह ''मेरे पीछे हो ले'' (आयत 26ख)। उसकी अगली बातें ऐसे समर्पण से मिलने वाले प्रतिफल पर आधारित थीं। उसने कहा, ''और जहां मैं हूं, वहां मेरा सेवक भी होगा''[12] (आयत 26ग)। (बाद में यूहन्ना 14:1-3 में मसीह ने इस विचार को विस्तार दिया।) फिर उसने आगे कहा, ''यदि कोई मेरी सेवा करे, तो पिता उसका आदर करेगा'' (यूहन्ना 12:26घ)। स्वयं परमेश्वर द्वारा आदर दिए जाने की कल्पना करें! पौलुस ने कहा कि ''हमारा पल भर का हल्का सा क्लेश हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण और अनन्त महिमा उत्पन्न करता जाता है'' (2 कुरिन्थियों 4:17)!

झगड़े और दृढ़ीकरण का समय (आयतें 27-30)

झगड़ा (आयत 27)

यीशु मरने की बात कहने से हिचकिचाया नहीं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे यह विषय बड़ा सुखद लगा। मृत्यु का सामना करना न हमारे लिए आसान है, और न ही प्रभु के लिए आसान था। वह कोई रोबोट मशीन नहीं था। उसमें भी मांस और लहू था; वह भी हमारी ही तरह दुखी होता था।

यूहन्ना ने गतसमनी के उस दृश्य को नहीं लिखा, जहां मसीह ने प्रार्थना की, ''... हे मेरे पिता, यदि हो सके, तो यह कटोरा मुझ से टल जाए'' (मत्ती 26:39)।[13] परन्तु उसने गतसमनी से पहले यीशु के मन की झलक अवश्य दी। प्रभु ने कहा, ''अब मेरा जी व्याकुल हो रहा है'' (यूहन्ना 12:27क)। आगे भयंकर बातें होने वाली थीं: शारीरिक मृत्यु की पीड़ा और आत्मिक मृत्यु (परमेश्वर से जुदाई) की उससे भी बड़ी पीड़ा के अलावा, क्रूस की लज्जा, शैतान के साथ आत्मिक युद्ध (12:31), और पन्द्रह सौ वर्षों तक उनका पालन-पोषण करने के बाद परमेश्वर के लोगों द्वारा ठुकराए जाने का दर्द होना था।

इस सब पर विचार करते हुए, यीशु ने पूछा, ''... अब मैं क्या कहूं?'' (आयत 27ख) अर्थात, ''मैं क्या प्रार्थना करूं?'' क्या उसे प्रार्थना करनी चाहिए कि ''हे पिता, मुझे इस घड़ी से बचा'' (आयत 27ग)? नहीं।[14] उसने कहा, ''परन्तु मैं इसी कारण इस घड़ी को पहुंचा हूं'' (यूहन्ना 12:27घ)। वह ''खोए हुओं को ढूंढ़ने और उनका उद्धार करने आया है'' (लूका 19:10)। वह पृथ्वी पर मरने ही आया था (फिलिप्पियों 2:7, 8)।

दृढ़ीकरण (आयतें 28-30)

यीशु ने समर्पण के ये शब्द कहे: ''हे पिता, अपने नाम की महिमा कर'' (आयत 28क)। जीवनभर आज्ञाकारी रहकर उसने परमेश्वर के नाम की महिमा की थी (यूहन्ना 17:4) अब उसने अपनी मृत्यु के द्वारा भी महिमा करनी थी।

यहां पर कुछ अप्रत्याशित बात हुई: ''तब यह आकाशवाणी हुई'' (यूहन्ना 12:28ख)। यीशु की सेवकाई के दौरान, परमेश्वर ने तीन बार स्वर्ग से बात की थी: उसके बपतिस्मे के समय (मत्ती 3:17), उसके रूपान्तर के समय (मत्ती 17:5), और इस अवसर पर। उस आवाज़ ने कहा था, ''मैं ने उस [अपने नाम] की महिमा की है, और फिर भी करूंगा'' (यूहन्ना 12:28ग)। यीशु के जीवन से परमेश्वर के नाम की महिमा हुई थी; अब क्रूस के द्वारा महिमा होनी थी।

स्वर्गीय घोषणा से भीड़ इतनी स्तब्ध रह गई कि लोग तरह-तरह की बातें करने लगे कि यह क्या हुआ। ''तब जो लोग खड़े हुए सुन रहे थे, उन्होंने कहा; कि बादल गरजा, औरों ने कहा, कोई स्वर्गदूत उस से बोला'' (आयत 29)। हमें यह तथ्य याद दिलाया जाता है कि हमें केवल वही सुनाई देता है, जो हम सुनना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, इतना शोर है कि हमें कुछ सुनाई नहीं देता, परन्तु हम रेडियो ऑन करके कोई स्टेशन लगाते हैं और

फिर बातें या संगीत सुनने लगते हैं। यीशु के पास खड़े बहुत से लोग परमेश्वर की आवाज़ सुनने को तैयार नहीं थे। उन्हें यह केवल ''गरज'' अर्थात शोर सा लगा (इसी प्रकार, आज) बहुत से लोग प्रकृति में (रोमियों 1:20) या बाइबल में से (इब्रानियों 1:1, 2) परमेश्वर की आवाज़ ''सुनने'' को तैयार नहीं हैं।

निश्चय ही कइयों ने आवाज़ सुनी और उसे समझा भी, जैसा कि यूहन्ना ने लिखा भी है। यीशु अपने निकट के लोगों (विशेषकर अपने प्रेरितों) की ओर मुड़कर कहने लगा, ''यह शब्द मेरे लिए नहीं, परन्तु तुम्हारे लिए आया है'' (यूहन्ना 12:30)। इस अभिव्यक्ति का अर्थ यह हो सकता है कि ''मेरे लिए ही नहीं, तुम्हारे लिए *भी* है।''[15] पिता द्वारा दृढ़ीकरण से निश्चय ही पुत्र को अपनी आने वाली परीक्षाओं के लिए दिलेरी मिली, परन्तु यह विशेष तौर पर चेलों को विश्वास दिलाने के लिए तैयार था कि जिस दिशा में यीशु जा रहा था, वह परमेश्वर की योजना के अनुसार था।

विजय और परिवर्तन का समय (आयत 31-33)

विजय (आयत 31)

क्रूस पर मसीह की मृत्यु से कई महत्वपूर्ण बातें होनी थीं। उदाहरण के लिए, यह विजय का समय होना था, बुराई की शक्तियों की विजय का। *लगना* ऐसे था जैसे यह पराजय का क्षण था, परन्तु वास्तव में यह विजय का समय होना था।

यीशु ने कहा, ''इस जगत का न्याय होता है, अब इस जगत का सरदार[16] निकाल दिया जाएगा'' (आयत 31)। ''इस जगत का सरदार'' शैतान को कहा गया है (देखें यूहन्ना 14:30; 16:11)। क्रूस पर शैतान के साथ सबसे बड़ा युद्ध होना था। आज बहुत से लोग अच्छाई और बुराई की शक्तियों के बीच मिथ्या युद्ध की कल्पना करते हैं (आम तौर पर इसे ''आरमिगिदोन का युद्ध''कहा जाता है।), परन्तु बाइबल बताती है कि निर्णायक युद्ध क्रूस पर लड़ा गया था। इब्रानियों की पुस्तक के लेखक ने कहा है कि मसीह मांस और लहू में भागीदार हुआ ''ताकि *मृत्यु के द्वारा* उसे जिसे मृत्यु पर शक्ति मिली थी, अर्थात शैतान को निकम्मा कर दे। और जितने मृत्यु के भय के मारे जीवनभर दासत्व में फंसे थे, उन्हें छुड़ा ले'' (इब्रानियों 2:14, 15)। शैतान आज भी सक्रिय है (1 पतरस 5:8), परन्तु हम पर उसकी पकड़ कमज़ोर हो चुकी है; वह पराजित शत्रु है (याकूब 4:7)।

मन परिवर्तन (आयतें 32, 33)

निश्चय ही क्रूस पर सबसे महत्वपूर्ण विजय पाप पर विजय पाना था (2 कुरिन्थियों 5:21; इफिसियों 1:7)। अपने प्रवचन में यीशु ने उससे मिलने की इच्छा से आए यूनानियों को नहीं भुलाया। अब उसने कहा, कि उसकी मृत्यु केवल यहूदियों के लिए ही नहीं, बल्कि सब लोगों के लिए होनी थी: ''और मैं यदि पृथ्वी पर से ऊंचे पर चढ़ाया जाऊंगा, तो सबको अपने पास खींचूंगा'' (यूहन्ना 12:32)।

''चढ़ाया जाऊंगा'' वाक्यांश नये नियम में ऊंचा उठाने के लिए भी इस्तेमाल हुआ है (1 तीमुथियुस 3:6; 4:10), परन्तु यूहन्ना की पुस्तक में इसका इस्तेमाल प्रभु की मृत्यु के लिए हुआ है (यूहन्ना 3:14; 8:28)। हमारे पाठ की अगली आयत से पता चलता है कि ''ऐसा कहकर उसने यह प्रकट कर दिया कि वह कैसी मृत्यु से मरेगा'' (यूहन्ना 12:33)।[17] उसकी मृत्यु पथराव या मारे जाने के किसी और यहूदी ढंग से नहीं; बल्कि रोमी क्रूस पर ''चढ़ाये जाकर'' होनी थी।

ऐसा होने पर, उसने ''सब लोगों को'' यहूदियों और अन्यजातियों दोनों को अपनी ओर खींचना था। उसने दोनों को एक देह में मिला देना था। बाद में पौलुस ने लिखा:

> क्योंकि वही हमारा मेल है, जिस ने दोनों [यहूदियों और अन्यजातियों] को एक कर लिया: और अलग करने वाली दीवार को, जो बीच में थी, ढहा दिया। और अपने शरीर में बैर अर्थात उस व्यवस्था, जिस की आज्ञाएं विधियों की रीति पर थीं, मिटा दिया, कि दोनों [यहूदियों और अन्यजातियों] से अपने में एक नया मनुष्य उत्पन्न करके मेल करा दे। और *क्रूस* पर बैर को नाश करके इस *के द्वारा* दोनों [यहूदियों और अन्यजातियों] को एक देह बनाकर परमेश्वर से मिलाए (इफिसियों 2:14-16)।

वह ''एक देह'' कलीसिया ही है (इफिसियों 1:22, 23; कुलुस्सियों 1:18)।

ध्यान दें कि यीशु ने लोगों को हांकना, धकेलना या ज़बर्दस्ती करना नहीं, बल्कि उन्हें *खींचना था।* खींचने की परमेश्वर की सामर्थ क्रूस और इसके द्वारा दिखाया जाने वाला प्रेम ही है (यूहन्ना 3:16; रोमियों 5:8)। जैसे सूरज की रोशनी धरती से नये पौधे को बड़ी कोमलता से खींचती है, वैसे ही मसीह का प्रेम लोगों को अपनी ओर खींचता है।[18]

उलझन और चुनौती का समय (आयतें 34-36, 46-48)

उलझन

लोगों को यीशु की बातें समझ नहीं आईं। उनका उसकी बातें न समझना आश्चर्य की बात नहीं; दुखद बात यह है कि उन्होंने उन्हें समझने का प्रयास नहीं किया। उनका उत्तर था, ''हम ने व्यवस्था की यह बात सुनी है,[19] कि मसीह सर्वदा रहेगा'' (आयत 34क)। पुराने नियम के किसी पद में यह नहीं कहा गया था, बल्कि पुराने नियम में यह बताया गया था कि मसीहा *अनन्तकालिक* राज पर *सदा के लिए* राज्य करेगा (देखें यशायाह 9:7; यहेजकेल 37:25; दानियेल 7:14)। यहूदियों ने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि मसीहा/ख्रिस्तुस ऐसा केवल ''सदा रहकर'' ही कर सकता था।

उन्होंने पूछा, ''... तू क्यों कहता है, कि मनुष्य के पुत्र को ऊंचे पर चढ़ाया जाना आवश्यक है?'' (यूहन्ना 12:34ख)। वे ''चढ़ाया जाना'' का अर्थ क्रूस पर चढ़ाया जाना समझते थे, परन्तु यह मसीहा के बारे में उनकी अवधारणाओं से मेल नहीं खाता था। वह मरकर भी शासन कैसे कर सकता था? उन्होंने फैसला किया कि यीशु किसी अर्थ में

''मनुष्य का पुत्र'' शब्द का इस्तेमाल कर रहा था, जिससे वे परिचित नहीं थे। उन्होंने पूछा, ''यह मनुष्य का पुत्र कौन है?'' (12:35क)। अन्य शब्दों में, ''तू मसीहा की ही बात कर रहा है, या किसी और की?''

चुनौती (आयतें 35, 36, 46-48)

यीशु ने उनके प्रश्न का उत्तर सीधे देने के बजाय घुमाकर दिया: वास्तव में उसने उत्तर दिया कि ''मनुष्य का पुत्र'' जिसकी वह बात कर रहा था, संसार की ''ज्योति'' था (आयत 35; देखें 8:12; 9:5)। परन्तु उसके मन में सबसे महत्वपूर्ण बात यह नहीं थी कि उसके सुनने वाले मसीहा के विवरणात्मक शीर्षकों को चुनकर समझ जाएं, बल्कि उसकी इच्छा थी कि वे उसे मसीहा के रूप में *स्वीकार* कर लें।

यह अवसर सम्भवतया इन लोगों को विश्वास दिलाने के लिए उसका अन्तिम सार्वजनिक अवसर था। कई अवसरों पर, मैंने किसी मण्डली में यह जानते हुए अन्तिम बार प्रचार किया है कि मुझे उनके साथ बात करने का दोबारा अवसर नहीं मिलेगा। यह ज़िम्मेदारी बहुत ही बड़ी थी। मैं क्या कह सकता हूं? क्या कहना चाहिए?

मसीह की अपील में ज़ोर उस समय की आवश्यकता पर था। उसने कहा, ''ज्योति अब थोड़ी देर तक तुम्हारे बीच में है'' (12:35ख)। पहले उसने अपने आप को ''जगत की ज्योति'' बताया था (9:5)। उसने इन लोगों के साथ अपनी मृत्यु से पहले केवल कुछ और दिन होना था। इसलिए उसने उनसे अवसर का लाभ उठाने का आग्रह किया: ''जब तक ज्योति तुम्हारे साथ है तब तक चले चलो; ऐसा न हो कि अन्धकार तुम्हें आ घेरे; जो अन्धकार में चलता है वह नहीं जानता कि किधर जाता है'' (12:35ग)। उसने उनसे उसे मसीह के रूप में स्वीकार करने की विनती की: ''जब तक ज्योति तुम्हारे साथ है, ज्योति पर *विश्वास* करो'' (आयत 36क)। यदि वे उसमें विश्वास ले आते, तो उन्होंने ''ज्योति के सन्तान'' होना था (आयत 36ख)। उन्होंने उसके प्रकाश का प्रतिबिम्ब बन जाना था।

यदि वे उसे स्वीकार न करते तो क्या होना था। अध्याय के अन्त की ओर आगे की झलक में, हम ज्योति को ठुकराने की त्रासदी देखते हैं। वहां यीशु ने कहा:

> मैं जगत में ज्योति होकर आया हूं ताकि जो कोई मुझ पर विश्वास करे, वह अंधकार में न रहे। यदि कोई मेरी बातें सुनकर न माने तो मैं उसे दोषी नहीं ठहराता, क्योंकि मैं जगत को दोषी ठहराने के लिए नहीं, परन्तु जगत का उद्धार करने के लिए आया हूं। जो मुझे तुच्छ जानता है और मेरी बातें ग्रहण नहीं करता है उस को दोषी ठहराने वाला तो एक है: अर्थात जो वचन मैं ने कहा है, वही पिछले दिन में उसे दोषी ठहराएगा (आयतें 46-48)।

यूहन्ना ने यह कहते हुए इस प्रवचन के अपने वृत्तांत को संक्षिप्त किया है: ''ये बातें कहकर यीशु चला गया और उनसे छिपा रहा'' (आयत 36ग)। यदि मसीहा के जीवन की

रूपरेखा ही हमारे लिए सही है, तो वह अपने चेलों को साथ लेकर जैतून के पहाड़ की ढलानों की ओर ''चला गया'' (मत्ती 24:1, 3)। परन्तु ''कहां'' गया इसका महत्व नहीं है; महत्व इस बात का है कि वह चला गया और उनसे ''छिपा रहा।'' उन्होंने अवसर को गंवा दिया था।

सारांश

प्रभु के ''अन्तिम उपदेश'' पर लोगों की प्रतिक्रिया कैसी थी? यूहन्ना 12 के अन्तिम भाग (आयतें 37-50) में यहूदियों में पाए जाने वाले अविश्वास पर ज़ोर दिया गया है। मैं जानता हूं कि जब मैं लोगों से वचन की बात मानने का आग्रह करता हूं और वे नहीं मानते तो कितना बुरा लगता है; अपने सुनने वालों में वचन को ग्रहण करने की कमी से यीशु का मन अवश्य दुखी हुआ होगा।

परन्तु अब हमें इसकी व्यक्तिगत प्रासंगिकता बनानी चाहिए।[20] क्या हम यीशु के लिए धन्यवाद करते हैं? क्या हम क्रूस के लिए धन्यवाद करते हैं? क्या हम क्रूस पर दिए जाने वाले यीशु के *दाम* के लिए धन्यवाद करते हैं (आयत 27)? क्या हम समय का महत्व समझते हैं? *आपके* उसे ग्रहण करने का ''समय आ पहुंचा है।'' यदि आप प्रभु के पास नहीं आए हैं, तो मेरी विनती है कि अभी आ जाएं।

टिप्पणियां

[1]सामान्यतया किसी क्षेत्र की मण्डली में सेमिनार में बोलने के लिए कहे जाने पर मुझे विषय दिए जाते हैं। [2]जैसा कि पहले देखा था, हम पक्का नहीं बता सकते कि यूनानियों के साथ यह घटना कब घटी। [3]यीशु स्त्रियों के आंगन में हो सकता है। हमारी रूपरेखा में, यह कहानी दो सिक्कों वाली विधवा की कहानी से पहले आती है। वह घटना भण्डार के निकट घटी (लूका 21:1)। जो स्त्रियों के आंगन में था। अन्यजाति स्त्रियों के आंगन में प्रवेश नहीं कर सकते थे। यह हमारी इस कहानी की बातों से मेल खाता है कि यूनानियों ने यीशु से भेंट करने की विनती की। अन्य शब्दों में, यीशु को वहां जहां वह था से निकलकर अन्यजातियों के आंगन में जाना आवश्यक था, ताकि वे उससे मिल सकते। [4]नये नियम में, यहूदियों और मसीहियों सहित कई लोगों को ''परमेश्वर का भय मानने वाले'' कहा गया है, पर शब्दों का इस्तेमाल विश्वासी अन्यजातियों के बारे में बताने के लिए जो अभी यहूदी नहीं बने थे, विशेष अर्थ में किया जाता था। [5]''धर्मांतरित'' शब्द का सम्बन्ध यूनानी शब्द *proserchomei* से है, जो उपसर्ग *प्रोस* (''से'' या ''की ओर'') के साथ *erchomai* (''आना'') को मिलाता है। नये नियम में यह अन्यजातियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है, जो यहूदी मत को अपनाने के लिए ''आते'' थे। धर्मांतरित बनने के लिए तीन रस्में पूरी करनी आवश्यक थीं: (1) यदि नर है, तो खतना; (2) गवाहों के सामने स्वयं का बपतिस्मा (डुबकी); और (3) बलिदान भेंट करना (जब तक मन्दिर रहा)। खतने की शर्त के कारण, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक परिवर्तित होती थीं। [6]''फिलिप्पुस'' मिश्रित यूनानी शब्द के एक रूप का संक्षेप रूप है, जिसका अर्थ ''घोड़े से प्रेम रखने वाला'' है। [7]दो बैतसैदा थे। एक कफ़रनहूम के निकट, गलील की झील के पश्चिम में था (मरकुस 6:45)। दूसरा, जिसे वास्तव में बैतसैदा जुलियास कहा जाता था, झील के उत्तर पूर्व में एक गांव था। फिलिप्पुस कफ़रनहूम के निकट वाले बैतसैदा में ही रहता होगा, पर वह गलील की झील के पूर्व में रहता हो सकता है, जो मूलत: एक अन्यजाति क्षेत्र था। [8]कलीसिया के प्रारम्भिक इतिहासकार यूसबियुस ने परमेश्वर की प्रेरणा रहित एक परम्परा की बात

की है कि यूनानी लोगों को यीशु को वेदी भेंट करने के लिए सीरिया के राजा की ओर से भेजा गया था–परन्तु यह निराधार है। [9]फिलिप्पुस और अन्द्रियास एक ही नगर के रहने वाले थे (यूहन्ना 1:44)। [10]''महिमा'' मसीह के जीवन के यूहन्ना वाले वृत्तांत के बाद के भाग का मुख्य विषय है। उसमें से पढ़ते हुए इसे देखें।

[11]''मसीह का जीवन, भाग 2'' में पृष्ठ 167 और 168 देखें। [12]यीशु ने स्वर्ग में होना था (देखें 2 कुरिन्थियों 5:8; फिलिप्पियों 1:23; प्रकाशितवाक्य 21:3)। [13]यह विषय सुसमाचार के वृत्तांतों के समानान्तर लेखकों द्वारा पहले ही लिखा गया था, जो पहले लिखे गए थे। [14]यूहन्ना 12:27 में ''परन्तु'' शब्द यूनानी शब्द *alla* जो एक विरोधसूचक शब्द है, से अनुवाद किया गया है। इस संदर्भ में, ''परन्तु'' से अधिक मजबूत शब्द होना चाहिए था। RSV में ''नहीं'' है। [15]इसे ''अक्षर लोप'' कहा जाता है जो अलंकार की भाषा है जिसमें कई शब्द कहे नहीं जाते पर उन्हें समझा जा सकता है। [16]''जगत'' का अनुवाद यूनानी शब्द *kosmos* से किया गया है, जिसका मूल अर्थ ''प्रबन्ध'' है। इस आयत में यह संसार के लिए नहीं, बल्कि पृथ्वी के लिए है। विशेषकर चट्टानों और पेड़ों जैसे भौतिक तत्वों के बजाय ''संसार के प्रबन्ध'' के लिए है। [17]यूहन्ना 12:32 में ''यदि'' शब्द का इस्तेमाल ''जब'' के अर्थ में किया गया है: ''मैं *जब*... ऊंचे पर चढ़ाया जाऊंगा।'' क्रूस पर चढ़ाया जाकर उसकी आने वाली मृत्यु के बारे में कोई संदेह नहीं था (अगली आयत देखें।)। [18]एक और रूपक जिसका इस्तेमाल किया जा सकता है, वह चुम्बक की खींचने वाली शक्ति है। प्रवचन के अन्त में नोट्स देखें। [19]''व्यवस्था'' जैसा कि यहां इस्तेमाल हुआ है, पुराने नियम की केवल पहली पांच पुस्तकों को ही नहीं कहा गया होगा, बल्कि पूरे पुराने नियम को कहा गया होगा। [20]आपको चाहिए कि अपने सुनने वालों के अनुकूल इसकी प्रासंगिकता को विस्तार दें। आप 25 और 26 आयतों में दी मसीह की चुनौती में वापस जाना चाहें तो जा सकते हैं: ''हमें निर्णय लेना आवश्यक है कि हम मरने के लिए तैयार हैं या नहीं। हमें अपने जीवन प्रभु को देने का निर्णय लेना आवश्यक है। हमें उसकी चुनौती से उन शर्तों के पास आना आवश्यक है!'' अपनी प्रासंगिकता बनाते हुए अपने सुनने वालों को बताएं कि जब तक वे मसीह की आज्ञा मानने को तैयार नहीं हैं, वे उसके ''पीछे'' चलने को तैयार नहीं हैं। यह गैर मसीही तथा उन मसीही लोगों पर लागू होता है, जो अविश्वासी हैं (मरकुस 16:15, 16; प्रेरितों 2:38; 8:22, 23; याकूब 5:16)।